AD EDUXIAN JOURNAL
A Quarterly Multidisciplinary Blind Peer Reviewed & Refereed, Open Acces & Google Scholar Indexed International E- Journal
Vol (1&2), Issue (3), Nov -Jan 2024-25 E-ISSN: 3048-7951

विविधता और पहचान का संकट: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. प्रकाश चन्द्र दिलारे
सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र)
गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा

सार

भारतीय समाज एक बहू आयामी समाज है, जो अनेक प्रकार की विविधताओ से परिपूर्ण है। इन विविधताओं में भारतीय संस्कृति के अनेकानेक रंगों के दर्शन होते हैं। इन्ही सब विविध रंगों के समन्वय को ही भारतीय समाज के नाम से जाना जाता हैं। समाजशास्त्रीय परिपेक्ष्य में भी इन्ही सब विविधताओं के आपसी संबंधों को समाज की संज्ञा दी गई हैं। प्रसिद्ध समाजशास्त्री मेकाईवर एवं पेज के अनुसार “समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल या तानाबाना हैं।” यहाँ अनेक संस्कृतियों का सह-अस्तित्व पाया जाता हैं। यह विविधता कृत्रिम विविधता अर्थात मानव निर्मित मात्र नहीं बल्कि प्रकृति प्रदत्त भी हैं। भारतीय समाज एक विविधता पूर्ण समाज हैं। किन्तु इसका अभिप्राय यह कतई नहीं हैं कि भारतीय समाज एक छिन्न भिन्न समाज हैं जो विभिन्न आधारों पर टूटा हुआ या बिखरा हुआ समाज हैं। बल्कि यह विविधता तो भारतीय समाज और संस्कृति कि मूल पहचान हैं। जो भारतीय समाज कि विविधता में एकता का प्रतीक हैं। जो कश्मीर से कन्याकुमारी एवं अटक से कटक तक भारत एक हैं कि युक्ति को चरितार्थ करता हैं। यही कारण हैं कि इस सम्पूर्ण भारत भूमि को एक सर्वमान्य नाम भारतीय गणराज्य दिया गया। ऐसे में इन सभी उपसांस्कृतिक समूहों के सामने सबसे बड़ी चुनौती अपने अस्तित्व / पहचान को बनाये रखना हैं। प्रस्तुत पेपर का मुख्य उद्देश्य भारतीय समाज में विध्यमान अनेक उपसंस्कृतियों के सामने अपनी पहचान

या अस्तित्व को बनाने कि समस्या एवं उसे बनाये रखने कि चुनौती का अध्ययन करना हैं। साथ ही संस्थागत उपायों को सुझाना है।

मुख्य बिंदु: भारतीय समाज, पहचान का संकट, समाज और संस्कृति, सामाजिक सम्बन्ध|

भारतीय समाज एक बहू आयामी समाज है, जो अनेक प्रकार की विविधताओ से परिपूर्ण है। इन विविधताओं में भारतीय संस्कृति के अनेकानेक रंगों के दर्शन होते हैं। इन्ही सब विविध रंगों के समन्वय को ही भारतीय समाज के नाम से जाना जाता हैं। समाजशास्त्रीय परिपेक्ष्य में भी इन्ही सब विविधताओं के आपसी संबंधों को समाज की संज्ञा दी गई हैं। प्रसिद्ध समाजशास्त्री मेकाईवर एवं पेज के अनुसार "समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल या तानाबाना हैं।" यहाँ अनेक संस्कृतियों का सह-अस्तित्व पाया जाता हैं। यह विविधता कृत्रिम विविधता अर्थात मानव निर्मित मात्र नहीं बल्कि प्रकृति प्रदत्त भी हैं। यहाँ की जलवायु और भौगोलिक बनावट भी अनेक विविध रूपों से हमें परिचित कराती हैं। भौगोलिक विविधता की दृष्टि से सम्पूर्ण भारतीय उपमहाव्दीप को पाँच प्राकृतिक खण्डों में विभक्त किया जाता हैं।

- उत्तर का पर्वतीय प्रदेश
- उत्तर भारत का विशाल मैदान
- दक्षिण का पठारी क्षेत्र
- राजस्थान की मरु भूमि, और
- समुद्र तटीय मैदान

जलवायु के आधार पर भी भारत में विविधता के अनेक रूप देखने को मिलते हैं। वर्षा का आसमान वितरण (कंही अतिवृष्टि तो कंही अल्प वृष्टि तो कंही सूखा), ऋतु परिवर्तन के साथ साथ तापमान में परिवर्तन (कंही गर्मी तो कंही सर्दी तो कंही पतझड़ तो कंही बसंत),

मिट्टी, वनस्पति, फसलें, फूल, नदियाँ, झरने ईत्यादी न जाने कितनी प्राकृतिक विविधताएँ भारतीय परिवेश में देखने को मिलती हैं। जो सामाजिक सांस्कृतिक न होकर प्राकृतिक विविधता के आयाम हैं। जो हमें प्रकृति प्रदत्त हैं जिसका सीधा प्रभाव भारत की सामाजिक सांस्कृतिक विविधता पर पड़ता है। या यूँ कहा जाए की भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक विविधता का आधार ही यह प्राकृतिक विविधताएँ हैं। क्योंकि संस्कृति के निर्माण का सीधा संबंध प्राकृतिक संरचना से हैं यही कारण हैं की संस्कृति को जीवन शैली कहा गया हैं। प्रसिद्ध समाज-वैज्ञानिक हरस्कोविट्स के अनुसार “ संस्कृति पर्यावरण का मानव निर्मित भाग हैं।”

सामाजिक सांस्कृतिक विविधता के अन्तर्गत मुख्य रूप से ऐतिहासिक, दार्शनिक, धार्मिक, जातीय, जनजातीय, प्रजातीय, क्षेत्रीय एवं भाषायी विविधताओं को शामिल किया जाता हैं। भारतीय समाज एवं संस्कृति को पुरातन संस्कृति की श्रेणी में गिना जाता हैं। क्योकि इस समाज का इतिहास ढाई हजार साल पुराना हैं जिसका प्रमाण हमें सिन्धु घाटी सभ्यता से मिलें अवशेषों से प्राप्त होता हैं। तब से लेकर अब तक भारतीय समाज की निरंतरता अनेक विविधताओं को अपने अंदर समेटे हुए हैं। जिसके आँचल में अनेक धर्म, दर्शन, सभ्यता, संस्कृति, ज्ञान, विज्ञान, प्रजाति, जाति, जनजाति, क्षेत्र और भाषा पली, बड़ी एवं विकसित हुई हैं। जो देश ही नहीं बल्कि विदेशों मे भी अपनी एक अलग पहचान बनाये हुए हैं।

भारतीय दर्शन एक समृद्ध दर्शन हैं जिसने भारत ही नहीं वरन सम्पूर्ण विश्व में ईश्वर, आत्मा, जीव-जगत, पराभौतिक एवं भौतिक विषयों की मूल्याकनात्मक व्याख्या का प्रसार किया। भारतीय दर्शन के मुख्य आधारो में आत्मा की सत्ता, कर्म की प्रधानता, पुनर्जन्म मे विश्वास, मोक्ष और आत्मसंयम को शामिल किया जाता हैं। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, और वेदान्त प्रमुख भारतीय दर्शन हैं। जिनके साथ महर्षि गौतम, कणाद, कपिल

मुनि, पंतजलि, जैमिनी और ब्रहमसूत्र जैसे महान भारतीय दाशनिकों का नाम जुड़ता हैं। बौद्ध दर्शन एक ऐसा दर्शन है जिसने आज भी समूचे विश्व में अपनी विजय पताका फहरा रखी हैं।

भारतीय समाज में समय के साथ साथ अनेक धर्मो की उत्पत्ति और उनका विकास हुआ हैं। भारत का सर्वाधिक प्राचीन धर्म हिन्दू धर्म हैं। जिसकी प्राचीनता के कारण इसे सनातन धर्म कहा जाता हैं। यह धर्म एकल धर्म न होकर अनेक पंथ एवं संप्रदाय का समन्वय हैं। यह भारत का सर्वाधिक प्राचीन एवं लोकप्रिय धर्म हैं। इसके प्रमुख पंथ एवं संप्रदाय में वैष्णव, शैव, शाक्त, पाशुपत, कालमुख, कबीर, दादू, रैदास, वल्लभ, नाथ ईत्यादी हैं। साथ ही जहाँ एक और भारतीय समाज में बौद्ध, जैन, सीख सरीखे महान धर्मों की उत्पत्ति एवं विकास हुआ हैं। वहीं भारत भूमि इस्लाम, ईसाई, पारसी और यहूदी जैसे धर्मो का भी आश्रय स्थल रहा हैं। जो वर्तमान मे भी बड़े आदर और सम्मान के साथ अपनी पहचान बनाए हुए हैं। भारतीय संविधान मे भी भारतीय गणराज्य को एक धर्म निरपेक्ष राज्य की संज्ञा दी गई हैं।

जातीय विविधता भारतीय समाज की अपनी एक मूल पहचान हैं। जो भारतीय समाज मे सामाजिक समूहों को जन्म के आधार पर विभिन्न समूहों में विभक्त करती हैं। जो भारतीय समाज में सामाजिक संस्तरण का मूल आधार हैं। जिनके अपने कुछ विशेषाधिकार, टेबु, जीवन-शैली, रीति-रिवाज, नियम उपनियम एवं धारणाएँ हैं। सांस्कृतिक दृष्टि से यह अपने आप में एक पूर्ण स्वायत्व समूह हैं बावजूद इसके सभी जातियाँ एक दूसरे से जजमानी व्यवस्था के माध्यम से जुड़ी हुई हैं। जातियाँ अनेक उपजातियों मे विभाजित हैं। एक अनुमान के आधार पर भारत में २०११ की जनगणना के अनुसार लगभग ४६ लाख जातियाँ एवं उपजातियाँ निवास करती हैं जो अपने आप में भारतीय विविधता का एक अनूठा उदाहरण हैं।

जातीय समूह के अलावा एक और सामाजिक समूह भारत की विविधता का प्रतीक हैं जिन्हे भारत के मूल निवासियों की संज्ञा दी जाती हैं जिन्हे जनजातीय समूह के नाम से जाना जाता हैं। जातीय और जनजातीय विविधता के कारण ही भारत को कुछ समाज वैज्ञानिकों ने अजायबघर के नाम से पुकारा हैं। जनजातीय जनसंख्या देश की कुल जनसंख्या का 8.08 % हैं। जो विश्व में अफ्रीका के बाद दूसरे स्थान पर हैं। वैसे तो भारत में जनजातीय जनसंख्या समूचे देश में फैली हैं। किन्तु पूरे देश का लगभग 80% जनजातीय जनसंख्या मिजोरम, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, नागालैण्ड और त्रिपुरा में हैं। संख्या में सर्वाधिक गोंड जो मुख्यत: मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और आन्ध्रप्रदेश में हैं। सबसे कम अंडमानी जो अंडमान और निकोबार में हैं। प्रत्येक जनजातीय का अपना एक विशिष्ट नाम, एक विशिष्ट बोली/भाषा, एक निश्चित क्षेत्र, एक विशेष संस्कृति होती है जो उसे अन्य जनजातियों से अलग बनाती हैं। समान्य निषेध, राजनीतिक संगठन और आर्थिक आत्मनिर्भरता इनकी प्रमुख्य विशेषता होती हैं।

प्रजातीय विविधता में शारीरिक विशेषताओं पर आधारित विविधता के आधार पर मानव समूहों को विभिन्न भागों में विभाजित किया गया हैं। जो एक मूर्त अवधारणा हैं। जिसके तहत लोगो को देख कर पहचाना जा सकता हैं। भारत को विभिन्न प्रजातियों के संगम स्थल के नाम से जाना जाता हैं। प्राचीन काल से ही भारत में विदेशीयों का आवागमन रहा हैं। जिसने प्रजातीय भिन्नता और मिश्रण को उत्पन्न किया। भारत में सर्वाधिक द्रविड़ (मुख्यत: दक्षिण भारत में) और आर्य (मुख्यत: उत्तर भारत में) प्रजातीय समूह के लोग निवास करते हैं। इसके अलावा यहाँ की जनसंख्या में कॉकेशायड, मंगोलायड, निग्रोयड प्रजातीय समूहों के शारीरिक लक्षण पाए जाते हैं। जो भारतीय विविधता का एक अनूठा और नायाब उदाहरण हैं।

भारत जैसे विशाल क्षेत्रफल वाले देश में क्षेत्रीय विविधता का होना स्वाभाविक हैं।

प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक दोनों ही द्रष्टिकोणों से भारत की क्षेत्रीय विविधता को देखा जा सकता हैं। भारतीय समाज में धर्म, जाति, जनजाति, दर्शन, भाषा, संस्कृति, त्यौहार, रीति रिवाज इत्यादि सभी क्षेत्रीय विविधता के प्रमुख्य आधार हैं।

क्षेत्रीय विविधता को अक्सर भाषायी विविधता के साथ जोड़कर देखा जाता हैं। भाषा मन के भावों की अभिव्यक्ति का साधन हैं। इसके माध्यम से हम अपने मनोभावों को दूसरों के सामने अभिव्यक्त कर सकते हैं और दूसरों के मनोभावों को जान सकते हैं। भाषायी विविधता भारतीय समाज का सबसे महत्वपूर्ण आयाम हैं। जिसे आजादी के बाद भारतीय गणराज्य में राज्यों के पुनर्गठन का भी आधार बनाया गया आज भी भारत में राज्यों का प्रमुख्य आधार भाषा ही हैं। भाषायी विविधता के बारे में भारत में एक कहावत प्रचलित है की भारतीय उपमहाद्वीप में हर दो कोस के बाद भाषा और पानी बदल जाता हैं। जिससे हम भारतीय समाज में भाषायी विविधता का अनुमान लगा सकते हैं। भारत एक बहुभाषी राष्ट्र की श्रेणी में आता हैं। समय समय पर हुए अनेक भाषायी सर्वेक्षणों के आधार पर भारत में लगभग 180 भाषाएँ एवं 544 बोलियाँ प्रचलन में हैं। जो हमें ज्ञात हैं इसके अलावा अनेक भाषाएँ एवं बोलियाँ ऐसी भी हैं जिन्हे हम आज तक न तो पढ़ पाए हैं और न ही पहचान पाए हैं। और वे सभी विलुप्त हो गई हैं। भारत में मुख्य रूप से 3 भाषायी परिवार की भाषाओं एवं बोलियों का चलन हैं।

- **इंडो-आर्यन परिवार:** इसमें मुख्य रूप से भारत की प्राचीनतम भाषा संस्कृत से संबन्धित भाषाएँ आती हैं । जैसे: कश्मीरी, हिन्दी, पंजाबी, राजस्थानी, मराठी, गुजराती, आसामिया, बांग्ला, ईत्यादी।
- **द्रविड़ भाषा परिवार:** इसमें मुख्यत: दक्षिण भारतीय भाषाएँ आती हैं जैसे: तमिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम ईत्यादी।

- **आस्ट्रो-एशियाई परिवार:** इसमें दक्षिण-पूर्व एशिया, भारत, बांग्लादेश की अनेक भाषाएँ शामिल हैं। जैसे: मुंडारी, संथाली, ख़ासी, बिरहोर, भूमिज़, कोरवा, कोरकू, जुआंग, हो ईत्यादी।

इसके अतिरिक्त चीनी तिब्बत परिवार की भाषाओं का भी भारतीय समाज में चलन हैं। जिनमें देश के उत्तर पूर्व भागों में बोली जाने वाली भाषाएँ आती हैं। जैसे: मणिपुरी, नेवाड़ी, लेपचा, नागा ईत्यादी भाषाएँ शामिल हैं। भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में भी भारत के विभिन्न क्षेत्रों मे प्रयोग की जाने वाली 22 भाषाओं को मान्यता प्रदान की गई हैं। जो अपने आप में भाषायी विविधता का एक संवैधानिक उदाहरण हैं।

अत: स्पष्ट है की भारतीय समाज एक विविधता पूर्ण समाज हैं। किन्तु इसका अभिप्राय यह कतई नहीं हैं कि भारतीय समाज एक छिन्न भिन्न समाज हैं जो विभिन्न आधारों पर टूटा हुआ या बिखरा हुआ समाज हैं। बल्कि यह विविधता तो भारतीय समाज और संस्कृति कि मूल पहचान हैं। जो भारतीय समाज कि विविधता में एकता का प्रतीक हैं। जो कश्मीर से कन्याकुमारी एवं अटक से कटक तक भारत एक हैं कि युक्ति को चरितार्थ करता हैं। यही कारण हैं कि इस सम्पूर्ण भारत भूमि को एक सर्वमान्य नाम भारतीय गणराज्य दिया गया। अनेक जाति, अनेक धर्म, अनेक संप्रदाय, अनेक मत, अनेक भाषा, अनेक क्षेत्र के वावजूद भी पूरे भारत वर्ष में एक ही विधि का शासन हैं। जिसे संविधान कहा जाता हैं। साथ ही यह विविधताएँ यहाँ समान्य एवं राष्ट्रीय उद्देश्यों कि प्राप्ति मे बाधक नहीं हैं। भाषायी विविधता के वावजूद भी भारतीय संस्कृति के प्रभाव से सभी में एकरूपता पाई जाती हैं। त्रिभाषा फार्मूला के अनुसार सभी शिक्षण संस्थाओं में हिन्दी, अँग्रेजी के साथ एक क्षेत्रीय भाषा को शामिल किया गया हैं। क्योंकि समाज में भाषा विचारों कि अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त

माध्यम हैं, क्षेत्रीय भाषा आपके विचारों को क्षेत्रीय स्तर तक, हिन्दी भाषा राष्ट्र स्तर पर और अँग्रेजी भाषा इसे अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुंचाएगी।

भारतीय एकता और अखंडता कि मिसाले सदियो से कायम हैं। किन्तु समाजशात्रीय परिपेक्ष्य इसे एक सामाजिक सांस्कृतिक प्रघटना के रूप में अध्ययन करता हैं। जहाँ हमें प्रभु सांस्कृतिक तत्वों का प्रभाव ज्यादा नजर आता हैं। जो समाज में आपसी टकराव, तनाव, मन-मुटाव ईत्यादी को जन्म देता हैं। कभी कभी तो इसका स्तर इतना बढ़ जाता है कि ये राष्ट्रीय एकता के लिए भी खतरा बन जाता हैं। क्यूकि संस्कृति कि यह मुख्य विशेषता है कि वह अपने अंदर आस पास के अन्य अल्प सांस्कृतिक तत्वों को अपने प्रभाव क्षेत्र के कारण शामिल कर लेती हैं। जिससे अल्प सांस्कृतिक तत्वों का प्रभाव विलुप्त हो जाता हैं। जिसे हम प्रभु संस्कृति के नाम से जानते हैं। इससे विविधता पूर्ण समाज में एक अति विकट समस्या का जन्म होता है जिसे हम अस्तित्व / पहचान का संकट के नाम से संबोधित करते हैं। भारतीय समाज में यह अति संवेदनशील समस्या हैं। जिसका शिकार बहुसंख्यक हिन्दू धर्म के सामने अल्पसंख्यक अन्य धर्म, प्रभु जाति के सामने अन्य जातियाँ, राष्ट्रीय संस्कृति के सामने क्षेत्रीय संस्कृतियाँ, हिन्दी भाषा के सामने अन्य देशी भाषाएँ होती हैं। ऐसे में इन सभी उपसांस्कृतिक समूहों के सामने सबसे बड़ी चुनौती अपने अस्तित्व / पहचान को बनाये रखना हैं।

प्रस्तुत पेपर का मुख्य उद्देश्य भारतीय समाज में विध्यमान अनेक उपसंस्कृतियों के सामने अपनी पहचान या अस्तित्व को बनाने कि समस्या एवं उसे बनाये रखने कि चुनौती का अध्ययन करना हैं।साथ ही संस्थागत उपायों को सुझाना है। ताकि समरसता पूर्ण सशक्त भारत के निर्माण के मार्ग को प्रशस्त किया जा सके। प्रस्तुत पेपर समीक्षा पर आधारित है। जिसमें लेखक द्वारा अपने अकादमिक अनुभव और अवलोकन के आधार पर द्वितीयक

स्त्रोतों से प्राप्त आकड़ो के माध्यम से समाजशास्त्रीय अवधारणाओं और सिद्धांतों के साथ साथ अन्य तथ्यपरक सूचनाओं के अध्ययन से एक सामाजिक सांस्कृतिक संकट अथवा समस्या की परिकल्पना को रेखांकित किया गया हैं।

भारतीय समाज सामाजिक सम्बन्धों का ताना-बाना हैं। जो विविधता से परिपूर्ण हैं। जिसमें सबसे बड़ी चुनौती हर छोटे से छोटे विविधता पूर्ण समूह के अस्तित्व की रक्षा करना एवं उन्हे समाज में समुचित स्थान एवं पहचान दिलाना हैं। साथ ही साथ समाज की निरंतरता के क्रम में उस स्थान और पहचान को बनाए रखना हैं। पहचान के समाज में कई प्रतिरूप हो सकते हैं जैसे सामाजिक पहचान, सांस्कृतिक पहचान, धार्मिक पहचान, राजनीतिक पहचान, प्रजातीय पहचान, जातीय पहचान, जनजातीय पहचान, क्षेत्रीय पहचान या भाषाई पहचान ईत्यादी। प्रत्येक पहचान का समाज में एक अलग स्थान और महत्व हैं। जो समय, स्थान और प्रस्थिति के अनुसार बदलती रहती हैं।

सामाजिक पहचान के आयाम देश, काल और परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं। जहाँ भारतीय परंपरागत समाजों में सामाजिक पहचान का मुख्य आधार जाति व्यवस्था होती हैं तो वहीं भारतीय आधुनिक समाजों में अनेक आधार (वर्ग व्यवस्था, व्यवसाय, धर्म, भाषा, क्षेत्रीयता, राजनीतिक प्रस्थिति) हो सकते हैं। जहाँ भारतीय परंपरागत समाजों में सामाजिक पहचान परंपरागत, वंशानुगत या प्रदत्त हो सकती हैं वहीं भारतीय आधुनिक समाजों में सामाजिक पहचान अर्जित की जाती हैं जो व्यक्ति अथवा समूह की क्षमता, काबिलियत, मेहनत और जागरूकता पर निर्भर करता हैं।

सांस्कृतिक पहचान व्यक्ति की अपेक्षा समूह अथवा समाज पर अधिक हावी होती हैं। सांस्कृतिक पहचान का सीधा संबंध संस्कृति से हैं। संस्कृति की अभिव्यक्ति व्यक्ति अथवा समूह की जीवन शैली में होती हैं। जो उसकी भाषा, मूल्य, विश्वास, प्रतिमान, प्रथा, पहनावा,

खानपान, लिंग आधारित भुमिका ईत्यादी में निहित होती हैं। यह सामाजीकरण की प्रक्रिया का मुख्य भाग है। जो परिवार, पीयर समूह, समुदाय एवं शैक्षणिक संस्थाओं पर निर्भर करता हैं। सरल शब्दों में व्यक्ति का सांस्कृतिक परिवेश ही उसकी सांस्कृतिक पहचान के लिए जिम्मेदार होता हैं।

धार्मिक पहचान का सीधा संबंध धर्म से हैं। भारत जैसे विविधता पूर्ण समाज मे अनेक धर्मों को मानने वाले लोग रहते हैं। एक समान आध्यात्मिक अथवा अलौकिक शक्ति में विश्वास, एक समान टेबू, पूजा के समान विधि विधान एवं तरीकों को मानने वाले लोग समान्यत: एक धर्म के माने जाते हैं। समान धर्म को मानने वाले लोगों की पहचान भी उसी धर्म के नाम से होती हैं। जो उस व्यक्ति, समूह अथवा समाज की धार्मिक पहचान कहलाती हैं। सामान्यत: यह पहचान परंपरागत, वंशानुगत या प्रदत्त होती हैं किन्तु आधुनिक समाजों में यह बाध्यकारी नहीं हैं।

राजनीतिक पहचान का भारतीय समाज में मिला जुला स्वरूप देखने को मिलता हैं। भारतीय परंपरागत समाजों में यह परंपरागत, वंशानुगत अथवा प्रदत्त एवं आधुनिक परंपरागत समाजों में इसे अर्जित भी किया जाता हैं। आधुनिक समाजों में भी यह प्रदत्त अथवा अर्जित दोनों रूपों मे देखने को मिल सकती हैं। वावजूद इसके आधुनिक समाजों में इसके अर्जित स्वरूप का प्रभाव ज्यादा देखने को मिलता है। प्रतिष्ठा और सम्मान की द्रष्टि से भी अर्जित राजनीतिक पहचान का अधिक महत्व हैं। जिसके लिए नेतृत्व क्षमता, चमत्कारिक व्यक्तित्व, समूह कार्य, प्रभाव शाली वक्ता जैसे गुणों का होना आवश्यक समझा जाता हैं।

प्रजातीय पहचान का मुख्य आधार व्यक्ति के शारीरिक लक्षणों जैसे शरीर का रंग, आखों का रंग, कद-काठी, हेयर स्टाईल, चेहरे की बनावट ईत्यादी होते हैं। इन्ही आधारों पर व्यक्ति की

प्रजाति का निर्धारण किया जाता है। जो उस व्यक्ति अथवा समूह की पहचान भी बन जाता हैं। यह व्यक्तिगत अथवा समूहगत पहचान का अंतर्राष्ट्रीय आधार भी माना जाता हैं।

जातीय पहचान भारतीय समाज में सबसे प्रभावशाली पहचान हैं जो यहाँ के सामाजिक संस्तरण व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करती हैं इसके प्रभाव से भारत में आधुनिक समाज भी अछूता नहीं हैं। जहाँ एक ओर यह भारतीय समाज का खंडात्मक विभाजन करती हैं। तो वहीं दूसरी ओर यह भारतीय समाज में श्रम विभाजन का सबसे श्रेष्ठ एवं पुरातन उदाहरण हैं। जातीय पहचान का भारतीय समाज में मूल्यांकन सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही पहलुओं से किया जाता हैं। वावजूद इसके यह आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी आरंभिक दौर में। जिसका मुख्य श्रेय राजनीतिक व्यवस्था को जाता हैं।

जनजातीय पहचान भारतीय समाज के एक विशेष वर्ग की पहचान का आधार है। जो भारतीय समाज की मुख्य धारा का हिस्सा ना होकर हाशिये पर हैं। जो आज भी भारत के दुर्गम प्रदेशों में निवास करते हैं। इस समूह की अपनी स्वायत्त संस्कृति, भाषा, विश्वास, एक निश्चित क्षेत्र, आर्थिक आत्मनिर्भता जैसे मानक ही इनकी पहचान का मुख्य आधार हैं। किन्तु आधुनिक समाज के प्रभाव के कारण इनकी सबसे बड़ी समस्या अपनी पहचान को बनाए रखना हैं। वावजूद इसके यह आज भी भारतीय समाज का अभिन्न अंग हैं। क्षेत्रीय पहचान का मुख्य आधार निवास की भौगोलिक स्थिति, विशेष क्षेत्रीय संस्कृति, क्षेत्रीय भाषा या बोली है। जिसे एक क्षेत्र विशेष के लोगो या समूह द्वारा ही उपयोग किया जाता हैं जो उनकी मुख्य पहचान बन जाती है । भारतीय समाज में क्षेत्रीय विविधता के अनगिनत उदाहरण मौजूद हैं।

भाषायी पहचान, पहचान की अवधारणा का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। भाषा ही वह प्रथम घटक हैं जो व्यक्ति अथवा समूह की पहचान का निर्धारण करता है। क्यूकि अंत: क्रिया की

सबसे पहली शर्त ही भाषा का आदान प्रदान हैं। स्वतंत्र भारत में क्षेत्रीय विभाजन का मुख्य आधार ही भाषा हैं। क्यूकि राज्यों का पुर्नगठन ही भाषा के आधार पर हुआ हैं। भारतीय संविधान में भी भाषा को स्थान दिया गया हैं। भाषायी पहचान ही भारत की मुख्य पहचान हैं जो भारत ही नहीं बल्कि विश्व स्तर पर भी भारत का प्रतिनिधित्व करती हैं।

पहचान के इन सभी प्रतिरूपों का आरंभ व्यक्तिगत पहचान से ही होता है। जो कालांतर मे समूह की पहचान और बाद में धीरे धीरे सम्पूर्ण समाज की पहचान बन जाती हैं। व्यक्तिगत पहचान का निर्माण समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होता हैं। जिसके द्वारा सेल्फ अथवा व्यक्तित्व का विकास होता हैं जो व्यक्ति की पहचान का मूल आधार हैं। समाजीकरण समाज में एक ऐसी प्रक्रिया का नाम हैं। जिसके द्वारा व्यक्ति को सामाजिक सांस्कृतिक संसार के नियमों, रीति-रिवाजों और प्रविधियों से परिचित कराया जाता हैं। इसके द्वारा संस्कृति का हस्तांतरण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को किया जाता हैं। प्रसिध्द समाजशास्त्री ब्रूम एवं सेल्जनिक के अनुसार "समाजीकरण की प्रक्रिया व्यक्ति के सेल्फ के विकास के बिना आगे नहीं बढ़ सकती"।

समाजीकरण की प्रक्रिया के दौरान सीखे गए समाज मान्य तरीकों से ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण होता हैं। और वहीं उसकी अपने समूह अथवा समाज में मौलिक पहचान होती हैं। जन्म के समय शिशु सामाजिक नहीं होता अर्थात वह समाज मान्य नियमों एवं विधानों से अनभिज्ञ होता हैं। वह ना ही सामाजिक न ही समाज विरोधी और ना ही असामाजिक होता हैं। वह तो मात्र एक हाड़ मांस का पुतला होता हैं। जिसे सामजिक बनाने का कार्य समाजीकरण की प्रक्रिया करती हैं। प्राथमिक समाजीकरण के पूर्ण होने पर ही वह एक सामाजिक प्राणी बनता हैं। जिसमें मुख्य भूमिका व्यक्ति के व्यक्तित्व अर्थात सेल्फ की होती हैं। जो मौलिक रूप से एक सामाजिक संरचना हैं। जिसका विकास समाजीकरण की प्रक्रिया

के दौरान सामाजिक अनुभवों के विकास के साथ साथ होता हैं। जिसके अंतर्गत व्यक्ति दूसरों के अनुभवों एवं विचारों को अपने जीवन में ग्रहण करना सीखता हैं। जिसे ही सामान्य भाषा में हम बुध्दी का विकास कहते हैं। जिसमें मुख्य भूमिका परिवार, क्रीडा समूह (प्ले ग्रुप), पड़ोस, मित्र मण्डल एवं शैक्षणिक संस्थाओं एवं उसके सहपाठियों की होती हैं। प्रसिध्द मनोवैज्ञानिक जार्ज हर्वट मीड के अनुसार परिवार, नातेदार, क्रीडा समूह (प्ले ग्रुप) और पड़ोस के संपर्क के दौरान शिशु सामाजिक प्रतिमानों को सीखता हैं जो दो चरणों में पूर्ण होती है।

- नकल की अवस्था
- नाटक की अवस्था

जिसे मीड महत्वपूर्ण अन्य (Specialized others) की संज्ञा देते हैं। शैक्षणिक संस्थाओं एवं उसके सहपाठियों और मित्र मण्डल के संपर्क के दौरान बच्चा सामाजिक मूल्यों को सीखता हैं। जिसकी परिनीति “खेल की अवस्था” में पूर्ण होती हैं। जिसे मीड सामान्यकृत अन्य (generalized others) की संज्ञा देते हैं।

व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास दो चरणों की अंत: क्रिया के माध्यम से होता है -

- मेरे व्यवहार पर अन्य लोग (समूह/समाज) क्या सोचते हैं ।मीड ने इसे मुझे (Me) की संज्ञा दी हैं।
- अन्य लोगों की धारणा के सापेक्ष, मैं अपने बारे में क्या सोचता हूँ । मीड ने इसे मैं (I) की संज्ञा दी हैं।

मीड के अनुसार मैं और मुझे में परस्पर अंत:क्रिया चलती रहती हैं और इस अंत:क्रिया के दौरान अंतत:व्यक्ति जिस निष्कर्ष पर पहुँचता हैं उसी के अनुसार उसके सेल्फ अर्थात व्यक्तित्व का विकास होता हैं। और वही उसकी समूह अथवा समाज में पहचान होती हैं।

मीड के अनुसार "व्यक्ति ही समाज का निर्माता हैं" अत: व्यक्तिगत पहचान ही कालांतर में समूहगत पहचान अथवा समाज की पहचान बन जाती हैं। जिससे सम्पूर्ण समाज को पहचाना जाता हैं। किसी भी समाज में समाजीकरण की प्रक्रिया और उसके मानक समान होते हैं। वावजूद इसके समाज में प्रत्येक व्यक्ति की प्रतिष्ठा और सम्मान में अंतर पाया जाता हैं। वर्तमान समाज में व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति व्यक्ति की प्रस्थिति (Status) के माध्यम से होती हैं। प्रत्येक प्रस्थिति की प्रतिष्ठा (Prestige) अलग-अलग होती हैं जिसका निर्धारण समाज द्वारा निर्धारित मानकों के अनुसार होता हैं।समाज में कोई प्रस्थिति अधिक महत्वपूर्ण होती है तो कोई कम, किसी को अच्छा माना जाता हैं तो किसी को बुरा। इसी प्रकार समाज में प्रत्येक प्रस्थिति के प्रति लोगो में आदर की मात्रा भी अलग-अलग होती है। आदर की इस मात्रा को ही प्रस्थिति की प्रतिष्ठा कहा जाता हैं। प्रस्थिति को धारण करने वाला व्यक्ति उसकी प्रतिष्ठा को भी ग्रहण करता हैं। किन्तु समान प्रतिष्ठा प्राप्त प्रस्थिति के प्रति लोगो का सम्मान (Esteem) भी अलग-अलग होता हैं। जो उस प्रस्थिति को धारण करने वाले व्यक्ति पर निर्भर करता हैं। जिसका निर्धारण प्रस्थिति प्राप्त व्यक्ति द्वारा अपने कर्तव्यों, दायित्वों और अपनी भूमिका के पालन के आधार पर होता हैं। जिसका सीधा संबंध व्यक्ति की कार्यकुशलता, दक्षता, विशेषज्ञता, क्षमता और सफलता से होता हैं। समाज में कई बार उच्च प्रतिष्ठा धारण किए व्यक्ति का सम्मान कम एवं निम्न प्रतिष्ठा प्राप्त व्यक्ति का सम्मान अधिक हो सकता हैं।

समाज में व्यक्ति एक समय में अनेक प्रस्थितियों को धारण करता हैं किन्तु जिस प्रस्थिति का सम्मान सर्वाधिक होता हैं। उसे ही व्यक्ति की मूल पहचान (Basis Identity) माना जाता हैं। प्रसिध्द समाजशास्त्री ई॰ टी॰ हिलर ने व्यक्ति की इस पहचान को मुख्य प्रस्थिति की संज्ञा दी हैं। प्रसिध्द समाजशास्त्री बीरस्टीड इसे व्यक्ति के लिए सबसे महत्वपूर्ण और

अग्रणीय मानते हैं। इसी के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया जाता हैं। समूह अथवा समाज में जिस व्यक्ति की प्रस्थिति का सम्मान सर्वाधिक होता हैं वह प्रस्थिति समूह अथवा समाज में प्रभु प्रस्थिति का रूप धारण कर लेती हैं जिसका अनुसरण उस समूह अथवा समाज के अन्य लोग भी करने लगते हैं। जो कालांतर में पूरे समूह अथवा समाज का प्रतिनिधित्व करती हैं और वहीं उस समूह अथवा समाज की मुख्य पहचान बन जाती हैं। पहचान निर्माण की इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में मुख्य भूमिका समाजीकरण की होती हैं। और समाजीकरण को पूरा करने में तीन तत्व सहायक हैं - अनुकरण, संकेत और भाषा । इनके अभाव में समाजीकरण की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

अनुकरण के अभाव में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संस्कृति का हस्तांतरण संभव नहीं हैं। यहीं वो तरीका हैं जिससे संस्कृति को आत्मसात किया जाता हैं। जिससे परिवार, समूह अथवा समाज के मूल्यों, प्रतिमानों, व्यवहारों को अपनाया जाता हैं। लोगो की अपेक्षाओं को पूरा किया जाता हैं। समाजीकरण की प्रक्रिया में संकेतों का भी महत्वपूर्ण स्थान हैं। यह वो माध्यम हैं जो भाषा की कमी को पूरा करता हैं। जहाँ भाषा अपने आप को लाचार महसूस करती है वहाँ संकेत काम आते हैं। शिशु के जन्म के तुरंत बाद माता एवं शिशु के मध्य अंत:क्रिया का मुख्य माध्यम संकेत ही होता है (जब तक शिशु बोलना न सीख जाए या उसे भाषा की समझ ना हो जाए)। किन्तु समाजीकरण की प्रक्रिया का सबसे सशक्त एवं महत्वपूर्ण आधार भाषा हैं। भाषा के बिना समाजीकरण की प्रक्रिया अधूरी हैं। भाषा ही संचार का मुख्य माध्यम है। जिसके द्वारा विचारों को अभिव्यक्त किया जाता हैं। समूह अथवा समाज की भावनाओं, अपेक्षाओं, विचारों को समझा जाता हैं। भाषा के माध्यम से ही सामाजिक अंत;क्रिया संभव हैं। समाज में समाजीकरण की प्रक्रिया, सेल्फ का विकास और पहचान का बनना स्वाभाविक प्रक्रिया हैं और वह निरंतर चलती रहती हैं। जो प्रत्येक

AD EDUXIAN JOURNAL
A Quarterly Multidisciplinary Blind Peer Reviewed & Refereed, Open Acces & Google Scholar Indexed International E- Journal
Vol (1&2), Issue (3), Nov -Jan 2024-25 E-ISSN: 3048-7951

समाज का एक अभिन्न अंग हैं। यह प्रक्रिया सजातीय समाजो के लिए तो प्रकार्य का काम करती है किन्तु विजातीय अथवा विविधता पूर्ण समाजो में यह प्रकार्य के साथ साथ अप्रकार्य को भी उत्पन्न करती हैं जिनका समाधान समाज के लिए एक बड़ी चुनौती हैं। समाज में अनेक प्रस्थितियों के मध्य सामंजस्य, एक ही व्यक्ति द्वारा धारण अनेक प्रस्थितियों मे मध्य संतुलन, प्रत्येक व्यक्ति, समूह अथवा समाज की पहचान को अन्य व्यक्ति, समूह अथवा समाज के समक्ष बनाए रखना एवं समाज की निरंतरता के साथ-साथ सभी को समुचित स्थान एवं सम्मान प्रदान करना एवं उनके अधिकारों की रक्षा करना जैसी समस्याओं का सामना हर विकसित अथवा विकासशील समाजों को करना पड़ता हैं। समाज में संगठन, एकता, सदभाव, शांति यह सब इसी बात पर निर्भर करती हैं की समाज इन समस्याओं को कितनी आसानी से हल कर पाती है अन्यथा समाज के टूटने में देर नहीं लगती।

व्यक्ति, समूह अथवा समाज की पहचान से जुड़ी इन समस्त समस्याओं की जड़ में समाज ही है अत: इनका समाधान भी समाज में ही खोजा जाना चाहिए।समाज में समाजीकरण की प्रक्रिया को पुनः भारतीय सामाजिक मूल्यों और प्रतिमानों के आधार पर संशोधित अथवा परिमार्जित करने की आवश्यकता हैं।संस्कृति की अवधारणा को समझने की आवश्यकता हैं। ताकि एक बहु-सांस्कृतिक समरसतापूर्ण सह-अस्तित्व के वातावरण का निर्माण किया जा सके।अवधारणा और उदाहरणों में स्पष्ट अंतर को समझना होगा। एक अवधारणा के सभी उदाहरणों में कुछ सामान गुणधर्म होने के कारण ही उन्हें एक साथ एक अवधारणा के अन्तर्गत रखा जाता हैं। अतः उदाहरणों के स्थान पर अवधारणों के आधार पर अपने आस-पास घटित होने वाली प्रघटनाओं को समझने एवं प्रतिक्रिया देने से सौहार्द्रपूर्ण वातावरण का निर्माण किया जा सकता हैं। जो समस्या के समाधान में अहम् भूमिका निभा सकता हैं।

इस प्रकार, हम भारतीय विविधता से भरे समाज में पहचान के संकट से जूझ रहे समुदायों को सुरक्षित महसूस कराकर अखण्ड भारत के स्वप्न को साकार करने की दिशा में एक कदम आगे बढ़ सकते हैं। अनेकता को एकता के सूत्र में पिरोने वाले एक भारत श्रेष्ठ भारत की संकल्पना को अनेक भाषाओं में एक भाव, अनेक रागों में एक भक्ति, अनेक रूपों में एक सत्य, अनेक नामों में एक ईश्वर, अनेक तंत्रों में एक प्रयोजन, अनेक मार्गों में एक गंतव्य, अनेक अभिव्यक्तियों में एक संस्कृति और अनेक प्रान्तों में एक भारत के भाव को आत्मसात कर साकार किया जा सकता हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ:

- भारत का भौतिक स्वरूप: https://ncert.nic.in/textbook/pdf/ihss102.pdf
- बेनेट,(2015) सांस्कृतिक अध्ययन और संस्कृति अवधारणा। *सांस्कृतिक अध्ययन* , *29* (4), 546-568। https://doi.org/10.1080/09502386.2014.1000605
- ग्रुसेक, जोन और हेस्टिंग्स, पॉल. (2015). हैंडबुक ऑफ़ सोशलाईजेशन
- मीड जी एच (1934) माइंड सेल्फ एंड सोसाइटी, यूनिवर्सिटी ऑफ़ शिकागो प्रेस
- मेकाईवर और पेज (1965) सोसायटी, मैकमिलन एंड कम्पनी, लन्दन, 5-6. https://censusindia.gov.in/nada/index.php/catalog/?page=1&sort_by=popularity&sort_order=desc&ps=15